विमुक्त और घुमंतू जन समुदाय: दशा और दिशा
('उचक्का' आत्मकथा के संदर्भ में)

सुभाष विष्णु बामणेकर,
शोधछात्र, हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
दूरभाष- 7875586916, 8408823041
ई-मेल : bamnekarsv@gmail.com

सारांश

घुमंतू समुदाय भी हमारी तरह मानवीय संवेदनाओं से युक्त है। इन्हें भी पीड़ा होती है। घुमंतू समुदाय को पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक हो या फिर राजनैतिक हो हर क्षेत्र में इनके साथ अपनी सोच को बदलने की जरूरत है ताकि मिलजुलकर समाज की मुख्यधारा से जुड़े रहे और एक सामान्य जीवन जी सके। सरकार अब इनकी तरफ ध्यान दे रही है। उन्हें अनेक प्रकार की सुविधाएँ दे रही है। समाज में उनका आर्थिक और सामाजिक शोषण होता आ रहा है। इसके लिए समाज उनकी तरफ ध्यान देना और उनके जीवन में परिवर्तन लाना आवश्यक है।

बीज शब्द- घुमंतू, समुदाय, उचक्का, जाति।

प्रस्तावना

21 वीं सदी विमर्शों की सदी है। चाहे वह दलित विमर्श, नारी विमर्श, आदिवासी विमर्श, विकलांग विमर्श, कृषक विमर्श, मीडिया विमर्श, पर्यावरण विमर्श, वृद्धावस्था विमर्श, किन्नर विमर्श या घुमंतू, विमुक्त जन समुदाय विमर्श आदि। विमुक्त घुमंतू जन समुदाय को समाज-वर्ण व्यवस्था और वर्ग व्यवस्था ने नकारा है। उन्हें हजारों वर्षों से मनुष्य के रूप में इस व्यवस्था द्वारा नकारा गया है। समाज में रहकर भी इनको अपने जीवन को व्यतीत करने के लिए अनेक सवाल इनके सामने आज भी खड़े हैं। रोजी-रोटी के सभी साधन और सभी मार्ग इनके लिए बंद कर दिए गए और इस कारण अनेक गुनहगार गतिविधियों को यह विमुक्त और घुमंतू समुदाय अपनाता है।

'घुमंतू' शब्द का अर्थ है, 'घुमक्कड़' जो बिना कारण इधर-उधर घूमे अथवा जब कोई शौक से अनुभव लेने को, ज्ञान-प्राप्ति हेतु यात्राएँ करता है, जिसके लिए खूब पैसा और समय चाहिए। इनको एक शब्द 'जनजाति' विशेष है।

घुमंतू जनजातियाँ यानी वे विशेष जातियाँ जिनका कोई स्थायी निवास नहीं होता और आजीविका की तलाश में भटकना। एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमना इनका शौक नहीं इनकी विवशता है। घुमंतू विमुक्त जनजातियों में लगभग 840 जातियाँ हैं।

15 अगस्त 1947 को भारत को आजादी मिली किंतु घुमंतू, अर्ध घुमंतू जनजातियों को 31 अगस्त, 1952 को स्वतंत्रता मिली। तब उन्हें विमुक्त घोषित किया गया। घुमंतू जनजातियाँ निरंतर भौगोलिक गतिशीलता बनाए रखती हैं।

रोजी-रोटी और छत पाने के लिए सभी कानूनी रास्ते बंद हो जाने के कारण चोरी कर जीनेवाला समाज एक ओर है तो कानून के अंतर्गत कानूनी ढंग से करोड़ो की चोरी करनेवाला तथाकथित प्रतिष्ठित और सुशिक्षित समाज दूसरी ओर है। बदलते समय के साथ घुमंतू जन समुदाय की इस व्यवस्था में स्थित कथाकथित, प्रतिष्ठितों, बुद्धिजीवियों और मध्यमवर्गीयों को समाज के दुःखों की कल्पना हो इसलिए लेखक लक्ष्मण गायकवाड़ जी ने 'उचक्का' आत्मकथा लिखकर समाज के सामने विमुक्त और घुमंतू जन समुदाय की दशा और दिशा प्रकट करने का प्रयास किया है।

'घुमंतू' जनसमुदाय की दशा और दिशा लेखक ने 'उचक्का' इस आत्मकथा के सहारे के समाज के सामने लाने का प्रयास किया है। जिनके पास न कोई अपना गाँव है, न खेत, न कोई जाति और न ही रोजी-रोटी के लिए साधन। प्रस्तुत आत्मकथा में लेखक ने लातुर तहसील के धनेगाँव नामक गाँव की उठाईगीर जाति का वर्णन किया है जिसमें उनका जन्म हुआ। यह जाति अपना घर-परिवार चलाने के लिए दूर-दराज के फैले गाँवों में वह जेब काँटना, उठाईगिरी करना यह धंदा करती है। इस संदर्भ में लेखक कहते हैं-"इस धनेगाँव को ही मैं अपना 'वतन का गाँव' कहता हूँ। जब मैं छोटा था तब मेरे घर पर घास-फूस का छप्पर था। यह छप्पर मुझे गौरैया के घोंसले की तरह लगता। जमीन पर बैठकर रेंगते हुए ही हम सबको इस घर के भीतर जाना पड़ता था। दादी

नरसाबाई घर का खर्चा चलाती थी। दादा बेकार हो चुका थ। उसे दिन में दो बार पुलिस स्टेशन में हाजिरी लगवानी पड़ती थी। इस कारण वह कोई काम नहीं कर सकता था। वैसे बहुत पहले से हमारा पूरा घर दादा लिंगप्पा ही चलाता था।"[1]

रोटी की जिम्मेदारी निभाने के लिए कभी-कभी जान भी गँवाने का धोखा था। घर में बुजुर्ग ही घर का सारा खर्चा उठाता है। लेकिन पुलिस का डर मन में समय-समय पर था। एक दिन दादाजी से जेब काँटते समय समय बाजार में शराब के नशे में चोरी करने गया और धोती में बड़ी हिपाजत से रखे पैसों को चुराना उसके लिए शिकार के पास गया और नशे की हालत में उस आदमी को ब्लेड गलत जगह पर मारकर चोरी करके भागने में असफल होते हैं। पुलिसवाले पकड़ते है और बहुत पिटाई करते है। पुलिस का अन्याय भी सहन करना पड़ता है।

पुलिसवालों ने जाँच करने के लिए उसे पकड़ा और मारा भी। पुलिस उसे कहते हैं, "बोल कहाँ रखा है पैसा, सोना-बोल, नहीं तो बहुत पिटाई होगी।" दादा कह रहा था "देखो साब, घर में कहाँ कुछ है।" पुलिसवालों ने कहा, "तेरी राँड को मालूम होगा।" और दादी के बालों को खींच वे उसे भी पीटने लगे। मेरी माँ, धोंडाबाई पुलिस आई है यह सुनकर ही जंगल की ओर भाग गई थी।"[2]

आर्थिक संकट के कारण घर चलाना कठिन होता है और पेट का सवाल चूप बैठने नहीं देता लेकिन घर के सदस्यों को भी इसकी त्रासदी भुगतनी पड़ती है। घुमंतू समुदाय के सामने सबसे बड़ा सवाल है पेट का। कहाँ जाए? और क्या खाएँगे? इसी तरह वे दर-दर भटककर अपना पेट भरते हैं। लेकिन इसके लिए उनकी बहुत पिटाई होती है। एक-एक महीनों तक जेल में रखा करते हैं। इसी कारण इस समुदाय की बहुत दयनीय स्थिति है।

इस समूह के सामने आर्थिक संकट के साथ जाति-व्यवस्था तथा बेरोजगारी का भी संकट है। इसके बारे में लेखक करते हैं-"मेरे पिताजी मारतंड बाबा को 'यह उठाईगीरों की हाति का है' कहकर लोग मजदूरी का कोई काम न देते। माँ धोंडाबाई को भी खेतों पर काम न दिया जाता।"[3]

उठाईगीरों जाति के लोगों को गाँव तथा आसपास के गाँव रोजगार या खेती का काम करने कोई भी बुलाता नहीं। और इसी कारण उन्होंने अपराधिक गतिविधियों में चोरी करना यही मार्ग अपनाया। इसी के आधार पर वे अपना परिवार चलाते। गाँव के बाहर जाना हो तो पुलिस पाटील का प्रमाणपत्र लेना पड़ता था। और वो भी यह देने के लिए बड़ी घूस लेता। प्रमाणपत्र के बगैर यह समुदाय कहीं भी घूम नहीं सकता। ठीक जानवर की तरह इस बिरादरी का हाल दिखाई देता है।

उठाईगीरों के घर में भी परंपरा नजर आती है। इस संदर्भ में लेखक कहते हैं- "अब हमारे घर में चोरियाँ करनेवाले तीन सदस्य हो गए। अण्णा या भाऊ के साथ बहन के पीछे रहकर सामान सँभालने के लिए मैं कभी लातूर, अंबाजोगाई या रेणापुर के साप्ताहिक बाजार जाता। चोरी का सामान लाकर वे मुझे सौंपते, मैं सँभालने बैठता।"[4]

बेरोजगारी के कारण घर में आनेवाली पीढ़ी को भी यह करना पड़ता। चोरी करके अपनी जिंदगी गुजारनी पड़ती। कथा में चोरी करने के लिए धोबी के दो बच्चों की नीलामी होती है। इससे स्पष्ट है कि आगे चलकर वे बच्चे बड़े होकर सफल चोर बनेंगे। यही इस समुदाय की मानसिकता भी दिखाई देती है।

समुदाय के लोग बच्चों को स्कूल नहीं भेजते। वे उन्हें चोरी करना ही सिखाते हैं। जंगल में रहने के कारण उनको अलग नजर से देखा जाता है। कभी-कभार समाज से उन्हें बहिष्कृत किया जाता है। कथा में जात-पंचायत बुलाकर निर्णय लिया के मारतंड गाँव छोड़े अथवा लक्ष्या को स्कूल भेजना बंद करें। "अरे मारतंड, अपनी जाति में आज तक कोई पढ़-लिख सका है क्या? अपने बच्चे अगर स्कूल जाने लगे, तो हम सभी का वंश डूब जाएगा। यल्लामा देवी का प्रकोप हो जाएगा। देख मारतंड, हम फिर कहते हैं कि लक्ष्या को स्कूल से निकाल ले। अगर वह फिर स्कूल गया तो हम जात-पंचायत बिठाएँगे और तुझे बहिष्कृत करेंगे।"[5]

घुमंतू समुदाय में शिक्षा के बारे में भी निरसता दिखाई देती है। समुदाय पर धर्मांधता का प्रभाव दिखाई देता है। उन्हें बच्चों के भविष्य के बारे में भी कोई चिंता नहीं दिखाई देती।। शिक्षा के अभाव में ये जातियाँ जानवरों से बदतर जीवन व्यतित करने को विवश है। संसार में सभी जीव अपना घर बनाकर जीवन बिताते हैं। एक पक्षी भी घोंसला बनाता है, गली का जानवर भी एक स्थान खोज लेता है, जीवनभर उसी में वह रहता है लेकिन घुंमंतू लोगों को जिंदगी अपना खुद का घर नहीं मिलता।

शिक्षा के अभाव के कारण इस समाज में अंधश्रद्धा भी दिखती है। इधर-उधर घूमने के कारण ईश्वर, भगवान, अल्लाह को अलग-अलग प्रकारों से प्रसंन्न कराने का प्रयास करते हैं। करीम चाचा ने 'देवी माँ' के सामने बकरे बली चढ़ाते समय कहा-"या अल्लाह।"[6] और बकरे का सिर धड़ से अलग कर दिया। मंदिर के सामने वह गड्ढा खून से भर गया था। करीम चाचा ने बकरे क चारों पैरों को तोड़ दिया। कटा हुआ सिर और चारों पैर माँ की मूर्ति के सामने रख दिए।

घुमंतू समाज में परंपरा को ज्यादा महत्त्व दिया है। जन्म से ही शिशु अपराधी श्रेणी में मान लिया जाता है। इसी कारण वह अपना घर नहीं बनाते। जात-पंचायत को महत्त्व दिया जाता है। रूढ़ियों से समाज में विवाह की परंपरा रूढ़ है। कहते हैं-"हमारे यहाँ पति अपनी पत्नी को कभी भी छोड़ सकता है। दूसरी शादी कर सकता है। इसके लिए उसे जात-पंचायत में जाना पड़ता है। शादी का खर्च लौटाकर पति-पत्नी एक-दूसरे से अलग हो सकते हैं। अगर स्त्री अलग होना चाहती है, तो पति जितना कहेगा, उतना विवाह का खर्च लौटाकर वह उससे अलग हो सकती है। अगर पुरुष पत्नी को छोड़ना चाहता है, तो पत्नी का बाप विवाह का जितना खर्च माँगता है, उतना उसे देकर वह अलग हो सकता है।"[7]

घुमंतू समाज के सामने पेट का सवाल खड़ा है। उन्हें एक दिन का खाना पेट भरकर नहीं मिलता। हमेशा पेट का बड़ा सवाल इस समुदाय के सामने होता है। समाज में रहकर भी उन्हें पेट भरने के लिए चोरी जैसे अपराध करने पड़ते हैं। उन्हें पेट भरने के लिए कई जगहों पर घूमना पड़ता है। पेट के लिए भटकते समय ठीक से खाना-पीना तो दूर की बात नहाना-धोना, पानी, शौचालय जेसे मुलभूत सुविधाएँ भी नहीं मिलती। कुछ सामाजिक दबाव और कुछ व्यक्तिगत विवशताओं के चलते वे जाने-अनजाने में असामाजिक कार्यों से जुड़ते चले जाते हैं। उनके पास अेनक गुण, कला, नृत्य संगीत आदि का ज्ञान होता है लेकिन समाज और सरकार इन्हें संरक्षित करके उनका विकास कैसे हो इसकी तरफ ध्यान देना आवश्यक नहीं समझता। घुमंतू समाज के विकास के लिए इसकी ओर ध्यान देना आवश्यक है।

'उचक्का' में घुमंतू समुदाय की दयनीय स्थिति दिखाई देती है। उनकी मजबूरी, भूख के कारण होनेवाली छटपटाहट, उनकी दरिद्रता, जीवन जीते समय अनेक कठिन प्रसंगों का सामना करना पड़ता है। जीवन में पेट का सवाल बड़ा है। पेट के लिए कुछ भी करने के लिए आदमी तैयार होता है। इस संदर्भ में लेखक लिखते हैं-"पंढरपुर की यात्रा के दरमियान एक स्त्री चूल्हे पर पतीली में चावल पका रही थी। तभी उठाईगीरों में शर्त लगी की वह चावल की पतीली को गायक करने पर चर्चा होती है। तभी जावली के संतराम जीजा ने कहा कि "मैं उठाईगीर की सच्ची औलाद हूँ। और जीजा और भाड़गाँव के सघाराम में शर्त लगी।"

घुमंतू समुदाय को खाने के लिए चोरी भी करनी पड़ती है, और समाज में सुख-सुविधाओं से वंचित भी रहना पड़ता है। सभ्य समाज भी एकतरफ और न्याय दिलानेवाले पुलिस भी किस प्रकार से शोषण करते हैं इसका वास्तव चित्रण लेखक लक्ष्मण गायकवाड़ ने किया है। इसी समाज के प्रति समाज को थोड़ी-सी भी दया नहीं है। उनके सामने खाने की समस्या है। इस संदर्भ में लेखक कहते-'पेटभर खाना नहीं मिलता, शिक्षा अभाव के कारण कहीं भी नौकरी नहीं मिलती थी।' घुमंतू समाज को पेट के लिए इधर-उधर घूमना पड़ता है। स्थान बदलकर जीवन व्यतीत करना और उसी कारण पाठशाला में प्रवेश नहीं लिया जाता। अतः शिक्षा के अभाव के कारण समाज में अंधविश्वास भी देखने को मिलता है। "बेर और रुचिक के पेड़ के बीच ही शौच को बैठना चाहिए। ठीक एक माह बाद इन दोनों पेडों के बीच रुपए का एक सिक्का किसी का मुँह न देखते हुए जमीन में गाड़ देना चाहिए। इससे यह होगा कि आदमी के पास कितने भी रुपए आए, खर्च हो जाएँ, एक रुपए हमेशा जेब में बचा रहेगा।"[8]

ऐसा अंधविश्वास भी घुमंतू समाज की संस्कृति में दिखाई देता है। एक अंधविश्वास के कारण लेखक कहते है कि इतनी भयावह स्थितियों का सामना करना पड़ता था। वे पुरानी यादों के कारण आज भी बेचैन हो जाते हैं।

कथा में इसी समाज के अंतर्गत वर्णव्यवस्था का भी भेद दिखाई देता है। अमीर-गरीब के बारे में लेखक शोभा को कहते हैं-"शोभा, मैं बहुत गरीब हूँ। तुम तो अमीर लड़की हो। हम दोनों को कोई देख लें; तो लोग क्या समझेंगे?"[9] मित्र, प्रेम, अपनेपन में भी गरीब, अमीर ऐसा भेद समाज में कई सालों से क्यों चलता आया है? इस प्रकार का सवाल लेखक के मन में उठता है। लेकिन घुमंतू के साथ अन्याय होता ही आ रहा है। उच्च-नीच का भेदभाव आज भी समाज में है। शोभा और लेखक एकदम करीब थे। लेखक उसके बारे में कहते हैं-"शोभा तुममें और मुझमें जमीन-आसमान का अंतर है। मैं बहुत गरीब हूँ। तुमसे प्रेम करने की योग्यता मुझमें नहीं है। हम दोनों प्रेम के कारण करीब आए और हम दोनों पाक हैं। अब आगे मेरे-तुम्हारे संबंध रहेंगे पर भाई-बहन की तरह।" शोभा को इसका बुरा लगा लेकिन समाज के बंधन, मजबूरी इसके कारण समाज में भेद स्पष्ट है। लेखक कहते अमीर होते हुए भी एक गरीब पर प्रेम करनेवाली शोभा को मैं कैसे भूल सकता हूँ।

इस कथा के हर पहलू को लेखक ने वास्तव पर चित्रित किया है। आर्थिक विवंचना भी इसमें दिखाई देती है। इसके बारे में कहा है-"मेरा बाबा मर गया है। लकड़ियाँ लाने के लिए मेरे पास पैसे नहीं है।" इससे स्पष्ट है कि घुमंतू समुदाय की कितनी दयनीय अवस्था है। लकड़ियाँ लाने के लिए भी इन लोगों के पास पैसे नहीं होते। उनकी अवस्था अत्यंत दयनीय होती है।

- **निष्कर्ष :**

अतः इसी आत्मकथा से लेखक ने घुमंतू विमुक्त जनजातियों का संगठन करने के लिए प्रयास किया है। यह समुदाय भी हमारी तरह मानवीय संवेदनाओं से युक्त है। इन्हें भी पीड़ा होती है। घुमंतू समुदाय को पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक हो या फिर राजनैतिक हो हर क्षेत्र में इनके साथ अपनी सोच को बदलने की जरूरत है ताकि मिलजुलकर समाज की मुख्यधारा से जुड़े रहे और एक सामान्य जीवन जी सके। सरकार अब इनकी तरफ ध्यान दे रही है। उन्हें अनेक प्रकार की सुविधाएँ दे रही है। समाज में उनका आर्थिक और सामाजिक शोषण होता आ रहा है। इसके लिए समाज उनकी तरफ ध्यान देना और उनके जीवन में परिवर्तन लाना आवश्यक है।

- **संदर्भ सूची :**

1. लेखक लक्ष्मण गायकवाड, अनुवाद- सूर्यनारायण रणसूभे, उचक्का, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2019, पृष्ठ 9
2. वही, पृष्ठ 10
3. वही, पृष्ठ 10
4. वही, पृष्ठ 17
5. वही, पृष्ठ 19
6. वही, पृष्ठ 25
7. वही, पृष्ठ 43
8. वही, पृष्ठ 64
9. वही, पृष्ठ 80
10. http://www.vskgujarat.com
11. http://www.patrika.com.jodhpur